232 क लेख – मृत्युदण्ड उचित या अनुचित और उसका विकल्प
232 ख लेख – सक्षम न्यायपालिका, हमारी आवश्यकता या भ्रम
232 ग लेख– गरीबी रेखा और राजनैतिक तिकड़में
231 घ प्रश्नोत्तर कार्यालयीन प्रश्नो के उत्तर
232 च **पत्रोत्तर** 1.श्री दीनानाथ वर्मा रायपुर छत्तीसगढ
232 छ सरस्वती नंदन मानव कानपुर उत्तर प्रदेश
232 ज अन्ना जी सम्हल सम्हल कर चले
232 झ उडीसा के विधायक की हत्या

मृत्युदण्ड उचित या अनुचित और उसका विकल्प

आजकल फांसी की सजा उचित या अनुचित की चर्चा जोरों से चल पड़ी है। जब तक अज्ञात अपराधी फांसी पर चढ़ते रहे तब तक यह चर्चा कुछ लोगों तक सीमित थी किन्तु जबसे कुछ वर्गों के लोग फांसी की प्रतीक्षा करने लगे तबसे चर्चा कुछ ज्यादा ही गंभीर हो चली है। संसद पर आकमण के अपराधी अफजल गुरू की चर्चा कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला भी जोर शोर से उठा रहे हैं। दूसरी ओर संघ परिवार अफजल को फांसी देने के पक्ष में लगातार आंदोलन कर रहा है भले ही यदि फांसी की सजा का आदेश साध्वी प्रज्ञा के लिये हो जाये तो संघ परिवार भी अपनी भाषा बदल लेगा और उमर अब्दुल्ला भी। इसी तरह किसी सिख आतंकवादी के लिये पंजाब में और राजीवगांधी हत्याकांड के लिये तमिलनाडु में भी पेशेवर आवाजें उठने लगी हैं।

इस वर्ग प्रभावित चर्चा के साथ ही वे लोग भी फांसी के विरूद्ध आवाज उठाने में ज्यादा सकिय दिखने लगे हैं, जो फांसी की सजा के ही विरूद्ध हैं चाहे वह सजा किसी को भी क्यों न हो। वैसे तो इस संबध में प्रायः ही कोई न कोई लेख आता ही रहता है क्योंकि आजकल अपराधियों के पक्ष में मानवता की ढाल बनना स्वयं को हाई लाइट करने का सबसे आसान नुस्खा है। ऐसी ढाल समाज में दया का भाव पैदा करके आपको कुछ लोगों की नजर में मानवता वादी स्थापित करने में सहायक होती है भले ही उनकी यह सोच कितनी भी अव्यावहारिक क्यों न हो। कुछ लोग तो इसी नाम पर अपनी पहचान स्थापित करके अपनी रोजी रोटी तक का जुगाड़ कर लेते हैं। फिर भी ये बातें समाज में चलती रहती हैं। नवीनतम लेख दैनिक देशबंधु का सम्पादकीय लेख है जो गिरीश मिश्र जी का लिखा हुआ है । गिरीश जी सहित फांसी की सजा पर लिखे अनेक लेखों में मुख्य रूप से लिखा जाता है कि

1 सजा का उद्देश्य अपराधी में सुधार लाने का प्रयत्न होता है। यदि उसे मार ही दिया तो वह सुधरेगा कैसे?

2 फांसी की सजा जारी रहने के बाद भी अपराधों में कोई कमी नहीं हुई। इससे यह प्रमाणित होता है कि फांसी का कोई विशेश प्रभाव नहीं पड़ता।

3 फांसी एक अमानवीय कृत्य है।

4 यदि सरकार किसी को जीवन नहीं दे सकती तो उसे जीवन लेने का क्या अधिकार है?

5 जिन साक्षयों के आधार पर मृत्युदण्ड दिया जाता है उनमें कई बार असत्य साक्ष्य भी होते हैं।

6 समाज में प्रचलित न्याय व्यवस्था में मजबूत और सम्पन्न लोग तो ऐसी सजा से बच जाते हैं और गरीब लोग फांसी चढ़ जाते हैं।

यह कहना पूरी तरह गलत है कि दण्ड का उद्देश्य अपराधी में सुधार लाना है। यह तो पश्चिम की अवधारणा है। हमारी अवधारणा इससे भिन्न है। हमारे अनुसार व्यक्ति सुधार और चरित्र निर्माण समाज का काम है, राज्य का नहीं। जब कोई व्यक्ति सामाजिक अनुशासन से नहीं सुधरता तब उसको दण्ड के भय से सुधारना शुरू किया जाता है। यह कार्य राज्य करता है। इस दण्ड प्रकिया का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि उस दण्ड का समाज पर ऐसा प्रभाव पड़े कि अन्य लोग अपराध करने से डरें। दण्ड का उद्देश्य अपराधी के आचरण में सुधार तो आंशिक ही है। मुख्य उद्देश्य तो समाज पर पड़ने वाला प्रभाव ही है।

दण्ड के विषय में इस्लामिक अवधारणा हमारी भारतीय सोच की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही कठोर है। उसका ही परिणाम है कि वहॉ अपराध बहुत कम होते हैं। पश्चिमी देशों की दण्ड प्रकिया हमारी भारतीय दण्ड प्रकिया की अपेक्षा कुछ अधिक मानवीय होने के बाद भी दण्ड निश्चित है क्योंकि वहॉ राज्य समाज सुधार के कार्यों में कम हस्तक्षेप करता है। हमारी प्राचीन भारतीय परंपरा बीच की थी जो मुस्लिम प्रणाली की अपेक्षा अधिक मानवीय तथा पश्चिम की अपेक्षा अधिक कठोर थी। वर्तमान भारतीय दण्ड प्रकिया तो बिल्कुल

ही आधार हीन है। इसने समाज सुधार का सारा काम भी राज्य पर ही डाल दिया और दूसरी ओर दण्ड प्रकिया को पश्चिम के समान अधिक मानवीय कर दिया। दुष्परिणाम हुआ कि अपराधियों को दण्ड मिलना ही असंभव हो गया। अब जेल सुधार गृह बन गये हैं। कुछ ना समझ लोग तो जेलों में और ज्यादा सुधार की बात करते हैं। वे भूल जाते हैं कि वर्तमान समय में जेलों का जीवन स्तर भारत के बीस करोड़ लोगों के जीवन स्तर से बहुत अच्छा है। अनावश्यक कानून बना बना कर जेलों में संख्या बढ़ाते जाना और फिर उन्हें सामान्य से अच्छी सुविधाएँ देना बिल्कुल गलत है। तब तो और भी गलत है जब हमें बीस करोड़ गरीबों से भी टैक्स वसूल करके इन पर खर्च करना हो।

दण्ड का उद्देश्य समाज में अपराधों के प्रति भय पैदा करना है। स्वाभाविक है कि दण्ड का तरीका भय पैदा करने की जरूरत पर निर्भर करता है किसी सिद्धान्त पर नहीं। हमारे दो बेटों में से एक को यदि मामूली सा डांट दे तो उस पर गंभीर प्रभाव पड़ जाता है। दूसरे को बहुत जोर से डांटने पर भी प्रभाव नहीं पड़ता। दोनों की स्थितियाँ अलग अलग होने से दण्ड प्रक्रिया भी भिन्न ही होगी। यदि समाज में इतना भय व्याप्त है कि कठोर दण्ड की आवश्यकता ही नहीं है तो दण्ड में मानवीय सुधार करना चाहिये। किन्तु यदि समाज में अपराध के प्रति भय कम हो गया है तो दण्ड अधिक कठोर तथा अमानवीय होगा। भारत की वर्तमान स्थिति का आकलन करें तो सर्व मान्य है कि यहाँ अपराधों के प्रति भय बहुत ही कम हो गया है। ऐसी स्थिति में मांग तो यह उठनी चाहिये कि सार्वजनिक फांसी शुरू की जाये क्योंकि एक बार दण्ड और भय के बीच संतुलन आवश्यक है। यदि सार्वजनिक फांसी भी प्रभावोत्पादक न हो तो इससे भी ज्यादा वीभत्स दण्ड प्रकिया हो सकती है किन्तु यह उचित नहीं हो सकता कि हमारे कुछ मानवता वादियों के कहने से भय और दण्ड का संतुलन बिगड़ने दें। ऐसा उस समय तो और भी गलत होगा जब ऐसी मांग करने वाले लोग पेशेवर हों।

कुछ लोग कहते हैं कि मृत्युदण्ड होने के बाद भी अपराधों में तो कमी नहीं हुई। यह कहना सही है। इसीलिये तो मैं कहता हूँ कि मृत्युदण्ड को कठोर किया जाय। क्या आप मानते हैं कि मृत्युदण्ड बन्द होने से अपराध कम हो जायेंगे? यदि मृत्युदण्ड होते हुए भी अपराध नहीं घट रहे तो हम पहले अपराध घटाने के उपाय की चर्चा करें या मृत्युदण्ड हटाने की। जब हमारे कुछ तथाकथित विद्वान अपराध घटाने के उपाय खोजने के विषय में तो चुप रहते हैं तथा मृत्युदण्ड का विरोध करने में आगे रहते हैं तब संदेह होता है कि कहीं ये कोई विदेश संचालित संस्था से तो जुड़े नहीं हैं अथवा कोई विदेशी संस्था इन्हें ऐसा प्रचारित करने के लिये धन तो उपलब्ध नहीं करा रही। क्योंकि भारत में अपराध लगातार बढ़ रहे हैं, समाज में लगातार मानव स्वभाव ताप वृद्धि होकर हिंसा के प्रति विश्वास बढ़ रहा है, समाज में अपराधों के प्रति भय घट रहा है और हमारा तथा कथित विद्वान या समाजसेवी दण्ड को मानवीय बनाने के लिये निरंतर संघर्षशील है। उसे यह भी पता नहीं कि दण्ड तो सदा ही अमानवीय होता है। किसने कहा कि दण्ड मानवीय भी होता है। दण्ड समाज की मजबूरी है। दण्ड और मानवता का संतुलन बिगड़ेगा तो अपराध बढ़ेंगे ही जैसा अभी हो रहा है। अतः उचित होगा कि यह संतुलन बिगड़ न पाये।

हम जिसे जीवन दे नहीं सकते उसका जीवन लेने का भी हमें कोई अधिकार नहीं। यह सही है इसीलिये हमने प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकार की गारंटी दी है। साथ ही हमने यह भी गारंटी दी है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुरक्षित हो तथा इसमें राज्य के अतिरिक्त भी कोई अन्य बाधा पैदा न कर सके। समाज किसी का जीवन नहीं लेगा इतना ही पर्याप्त नहीं है। समाज का यह भी दायित्व है कि कोई अन्य भी उसका जीवन न ले। समाज एक निर्लिप्त संगठन न होकर एक दायित्व पूर्ण संगठन है जिसके अनुसार यदि कोई किसी अन्य का जीवन लेगा तो समाज उस नागरिक को अधिकतम सुरक्षा देगा और फिर भी यदि कोई व्यक्ति अपनी सीमाएँ पार करेगा तो उसे आवश्यकतानुसार दण्ड भी देगा भले ही प्राण दण्ड ही क्यों न हो। हम किसी व्यक्ति को अकारण कोई दण्ड नहीं दे सकते किन्तु किसी अन्य को अकारण किसी अन्य की हत्या करने की छूट भी नहीं दे सकते। हम यह दण्ड भी स्वयं नहीं दे रहे बल्कि हमें समाज ने ऐसा दण्ड देने का दायित्व सौंपा है। यदि ऐसे दायित्व के बाद भी समाज में अपराध बढ़े तो उसके लिये हम दोषी हैं कि हमने अपना दायित्व ठीक से नहीं निभाया।

यह कहना भी ठीक ही है कि कई बार निर्दोष भी फांसी पर चढ़ जाते हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में हम प्रकिया को ठीक करें या दण्ड देना ही रोक दें। प्रश्न कर्ता यह तो सुझाव दे सकते हैं कि हम अपनी प्रकिया को इस तरह ठीक करें कि सही आदमी दण्ड न पा जाये किन्तु सही व्यक्ति भी दण्डित हो सकता है इसलिये फांसी की सजा ही खत्म कर दें यह ना समझी की बात है। इसी तरह यह आधार भी महत्वहीन है कि सम्पन्न लोग बच जाते हैं और गरीब सजा पा जाते हैं। यह सच होते हुए भी प्रकिया सुधारने की आवश्यकता तो हो सकती है किन्तु दण्ड समाप्त करने का आधार नहीं बन सकती।

इन सबके बाद भी यदि कोई ऐसा मार्ग निकल पाता जिसमें फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति के मृत्युदण्ड में भी संशोधन होता तथा भय पैदा करने में भी कोई कमी नहीं आती तो अधिक अच्छा होता। पचीस वर्ष पूर्व ही हम सबने बहुत लम्बे शोध के बाद सुझाव दिया था कि यदि फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति अपनी दोनों आंख निकलवाकर अर्थात् अन्धा बनकर जीने के लिये न्यायालय से निवेदन करे तो न्यायालय आवश्यक जमानत पर तथा आवश्यक शर्तों के साथ उस व्यक्ति को तब तक स्वतंत्र जीने की छूट दे सकता है जब तक अपराधी, न्यायालय तथा जमानतदार सहमत हों। यह फांसी की सजा का एक अच्छा विकल्प बन सकता है। इस सुझाव पर भी कई बार चर्चा हुई। पेशेवर फांसी विरोधी तो इसे भी अमानवीय कहेंगे किन्तु विकल्प कभी

भी अमानवीय नहीं हो सकता क्योंकि विकल्प पर निर्णय उस व्यक्ति को करना है। ऐसे दण्ड का प्रभाव भी समाज पर लम्बे समय तक पड़ता रहेगा तथा उसका भरण पोषण भी समाज की अपेक्षा परिवार पर होगा। यदि उसका परिवार न चाहे या वह स्वयं अन्धा बनकर न रहना चाहे तो यह उसकी स्वतंत्रता होगी। इस सुझाव पर व्यापक चर्चा आवश्यक है।

कुल मिलाकर मैं कह सकता हूँ कि भारत के वर्तमान वातावरण में फांसी की सजा को और कठोर करके सार्वजनिक फांसी तक ले जाना चाहिये तथा साथ ही फांसी के प्रस्तावित विकल्प पर भी विचार किया जाना चाहिये जिससे फांसी की वर्तमान प्रणाली में संशोधन हो सके। साथ ही हमें ऐसे पेशेवर लोगों पर विशेष नजर रखनी चाहिये जो या तो विदेशी एजेन्ट के रूप में अथवा पेशे के रूप में मानवता के नाम पर अपराधियों की ढाल बने रहते हैं किन्तु यदि इस संबंध में कोई सैद्धान्तिक चर्चा होती है तो ऐसी चर्चा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। हमारा उद्देश्य फांसी की सजा का विरोध या समर्थन न होकर वर्तमान भारतीय वातावरण में अपराधों पर पड़ने वाले उसके प्रभाव तक ही सीमित है।

————00————

सक्षम न्यायपालिका, हमारी आवश्यकता या भ्रम

आज कल न्यायपालिका के पक्ष मे बहुत चर्चाऐं हो रही है। एक उच्च प्रशासनिक अधिकारी वी. के एस रे ने भी अपने नवीनतम लेख मे भ्रष्टाचार के विरूद्ध सशक्त न्यायपालिका की वकालत की है। उनके लेख के अनुसार ही भारत ला कमीशन के उपाध्यक्ष के टी एस तुलसी ने भी मजबूत न्यायपालिका की जरूरत बताई है। एक प्रसिद्ध विचारक राजकिशोर जी ने तो एक कदम और आगे जाकर लिखा है कि यदि सरकार गलत करे तब तो उसे रोकना न्यायपालिका का कार्य है ही । किन्तु यदि सरकार सही कार्य भी न करे तब सरकार को वह कार्य करने हेतु कौन मजबूर करेगा? निश्चित रूप से वह भूमिका न्यायपालिका की होनी चाहिये । यदि कोई व्यक्ति इलाज के अभाव मे मर रहा है और सरकार उसका इलाज कराने की जिम्मेदारी से भाग रही है तो सरकार को मजबूर सिर्फ न्यायालय ही तो कर सकता है । निष्कर्ष यह है कि न्यायपालिका को सक्षम और सशक्त होना ही चाहिये। सशक्त न्यायपालिका की आवश्यकता बताने वालो की बाढ सी आई हुई है। जबसे न्यायपालिका ने सक्रिय होकर कुछ बडे राजनेताओ को जेल मे बन्द किया है तबसे तो न्यायालयो का एक तरफा गुणगान होने लगा है। न्यायपालिका से जुडे लोग तो और भी आगे आकर सशक्त न्यायपालिका की बात करते रहते है।

दूसरी ओर सशक्त प्रधानमंत्री की भी आवाज लगातार उठती ही रहती है। सभी विपक्षी दल तथा कार्यपालिका के लोग एक स्वर से सशक्त प्रधानमंत्री की आवाज उठाते रहते है। मीडिया के लोग भी सशक्त प्रधानमंत्री के पक्ष मे है । एक ओर तो प्रधानमंत्री सशक्त होने की बात फैलाई जाती है तो दूसरी ओर संसद सर्वोच्च की बात भी जोर शोर से उठती रहती है। अन्ना जी के आंदोलन के समय से तो छोटे से छोटा नेता भी संसद सर्वोच्च की ही रट लगा रहा है।

इस तरह न्यायपालिका भी मजबूत होना चाहिये प्रधानमंत्री भी मजबूत होना चाहिये और संसद भी मजबूत होनी चाहिये तब प्रश्न उठता है कि ये सब किसकी अपेक्षा मजबूत होना चाहते है क्योकि इन सबके समक्ष तो सिर्फ एक ही बचा है जो है लोक। और तो कोई है नही। ये सब लोग लोक की अपेक्षा और ज्यादा सक्षम और सशक्त होना चाहते है।

प्रधानमंत्री ने अपने को कमजोर कर लिया है। बहुत अच्छा हुआ । थोडी सी लोक मे ताकत आई। आज तक भारत मे कभी इतना कमजोर प्रधानमंत्री नही हुआ। न्यायपालिका तो साठ वर्षो से चूहा बनी हुई थी । अब उसमे कुछ ताकत आई है। संसद भी कभी इतनी सशक्त नही हुई थी जितनी मनमोहन सिंह के कार्यकाल मे है । पुराने जमाने मे तो पार्टी अध्यक्ष प्रधानमंत्री की चापलूसी तक करते देखे जा चुके है । आज पार्टी अध्यक्ष की एक स्वतंत्र हैसियत है। यहां तक कि कई जगह तो प्रशासनिक मामलो तक मे पार्टी अध्यक्ष का हस्तक्षेप है और प्रधानमंत्री किसी तरह एडजस्ट कर रहे है। विचारणीय प्रश्न यह है कि पुरानी सक्षम प्रधानमंत्री वाली लाइन ठीक थी या वर्तमान कमजोर प्रधानमंत्री वाली ।

न्यायपालिका मनमोहन सिंह के पूर्व कभी इतनी स्वतंत्र नही थी । अब न्यायपालिका सक्षम न्यायपालिका के लिये जो वातावरण बनवा रही है वह स्वतंत्रता के दुरूपयोग के अलावा कुछ नही। न्यायपालिका सक्षम होने की मांग करने के स्थान पर सक्रिय न्यायपालिका का विचार क्यो नहीं कर रही। लाखों और करोडो मुकदमे आज न्यायालयो मे लम्बित है। इनके निपटने मे न्यायपालिका की सक्रियता बढनी आवश्यक है अथवा सक्षमता। न्यायपालिका को यह दायित्व कहॉ से प्राप्त हुआ कि वह विस्फोट मे मरने वालो का मुआवजा तय करे? न्यायालय का यह दायित्व है क्या कि वह गरीबी रेखा की व्याख्या और समीक्षा करे? यदि न्यायालय मरने वालों का मुआवजा और गरीबी रेखा की व्याख्या करेगा तो क्या यह स्वाभाविक नही कि लाखो करोडों लम्बित मुकदमो मे और देर होती चली जावे? एक मुकदमे मे सर्वोच्चय न्यायालय तक जाकर फांसी की सजा हाूती है और उसके बाद राष्ट्रपति के पास क्षमा याचना भी अस्वीकृत हो जाती है और उसके बाद फांसी की तारीख तय हो जाती है और उसके बाद क्या होता है ? उसके बाद वह मामला सुप्रीम कोर्ट से नीचे की अदालत मे फिर से सुनवाई हेतु स्वीकार कर लिया जाता है। क्या यह उचित है कि आप न्याय के नाम पर बाल की खाल निकालते रहे और हम इस खाल निकाल खेल के लिये आपकी व्यवस्था करते रहे?

अभी अभी तीन चार दिन पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि यदि किसी प्रदेश मे कोई व्यक्ति भूख से मरेगा तो वहॉ का चीफ सेक्रेटरी उस मृत्यु का उत्तरदायी होगा । न्यायपालिका सरकार से जानना चाहती है कि देश मे कुपोषण की रोकथाम मे सरकार की योजना कितनी चौकस है । मै आज तक नही समझा कि न्यायालय ने आज तक आतंकवाद या नक्सलवाद की रोकथाम के लिये सरकारी तैयारी की कोई समीक्षा क्यो नही की? मै सक्षम न्यायालय की वकालत करने वाले राजकिशोर जी, श्री वी के एस रे जी अथवा अन्य विद्वानो से जानना चाहता हूँ कि भूख और कुपोषण के प्रति न्यायपालिका की अतिसंवेदन शीलता तथा अपराध आतंकवाद नक्सलवाद के प्रति अति संवेदनहीनता मे कोई विरोधाभाष नही दिखता क्या ? मेरे विचार मे तो अपराध आतंकवाद निवारण सरकार के साथ साथ न्यायपालिका का भी दायित्व है जबकि भूख कुपोषण गरीबी आदि उसका दायित्व न होकर कर्तब्य है। हमारे विद्वान मित्र दायित्व और कर्तब्य का फर्क अवश्य समझते होगें। आज कल न्यायपालिका व्यक्ति और व्यवस्था के बीच जिस तरह व्यवस्था के विरूद्ध व्यक्ति के पक्ष मे खडी दिख रही है वह न्यायपालिका को प्रशंसा तो दिला सकती है और दिला भी रही है किन्तु व्यवस्था को कमजोर करेगी जो अन्ततोगत्वा घातक हो होगा।

किसी सरकार का पहला दायित्व सुरक्षा और न्याय होता है । सुरक्षा और न्याय के साथ साथ सरकार यदि कर्तब्य के रूप मे भूख और कुपोषण का भी काम उठा ले तो इतना हो सकता है किन्तु यदि कोई सरकार सुरक्षा ओर न्याय को कमजोर करके भूख और कुपोषण पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दे तब न्यायालय का दायित्व है कि वह सरकार को अपने दायित्व की याद करावे । किन्तु जब न्यायपालिक ही सरकार को सुरक्षा और न्याय की जगह भूख और कुपोषण को प्राथमिकाता मानने ही हिदायत देना शुरू कर दे तब इस समाज का क्या होगा? यदि सरकार गलत करेगी तो उसकी समीक्षा तो न्यायालय भी कर सकता है और मतदाता भी उसे बदल सकताहै किन्तु यदि न्यायालय ही भूल करेगा तो उसकी समीक्षा कौन करेगा? मुझे सक्षम न्यायालय के पैरवीकारो से इस प्रश्न का उत्तर चाहिये। न्यायालय, अवमानना का डर दिखा कर सदा के लिये ऐसे प्रश्नो को चर्चा से बाहर नही कर सकता । यदि न्यायपालिका सर्वोच्च है तो उसके उपर कौन ? क्या न्यायालय लोक से भी उपर है? और यदि नही है तो न्यायपालिका पर अंकुश किसका?

जब भारत मे विधायिका सर्वोच्च बनने लगी, सक्षम प्रधानमंत्री तानाशाह बनने लगे, तब समाज ने न्यायपालिका को इस आशा से मजबूत किया कि न्यायपालिका और विधायिका का संतुलन होगा। सन पचहत्तर मे जनता ने आपरेशन विधायिका शुरू किया था । उस समय न्यायपालिका किस कोने मे खडी थी यह सब जानते है । उसके बाद धीरे –धीरे संतुलन बना और आज यह हाल है कि भारत मे एक कमजोर प्रधानमंत्री काम कर रहे है। यदि विधायिका तानाशाह हुई तो जनता ने वोट के द्वारा उसे चेतावनी दी किन्तु यदि न्यायपालिका उस दिशा मे गई तब उस पर नियंत्रण कैसे होगा? यदि देश कर कोई इकाई आतंकवाद और अपराध की कीमत पर भूख और कुपोषण को प्राथमिकता देना शुरू करे तो बताइये कि हम क्या कर सकते है। भोपाल गैस दुर्घटना मे मरने वालों को मुआवजा देने और दिलाने वालो मे प्रतिस्पर्धा चल रही है कि कौन इकाई ज्यादा दिला सकती है । अभी तो दस लाख से भी ज्यादा की बात चल रही है । हमारे छत्तीसगढ मे नक्सली किसी को पकड कर उसके टुकडे टुकडे कर दे तो सरकार दो लाख रूपया भी बडी मुश्किल से देगी। इतना फर्क क्यो? सरगुजा जिले में बाध किसी को मार कर खा जाय तो उसे दो लाख रूपया। डाकू यदि हत्या कर दे तो न्यायालय उसके मुआवजे की समीक्षा नही करेंगा और भोपाल गैस कांड जैसे मामलों मे बाल की खाल निकालेगां। न्यायपालिका को विचार करना चाहिये कि यदि जनता ने विधायिका की मनमानी को रोकने मे सफलता पाई है तो न्यायपालिका को भी अपनी प्राथमिकाताओं को ध्यान रखना चाहिये। भारत की जनता इस शब्द को नापसंद करती है कि विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका मे से कोई एक सर्वोच्च है अथवा किसी एक को अधिक सक्षम होना चाहिये। न तो कोई इकाइ सर्वोच्च है न किसी को ऐसा भ्रम पालना चाहिये। चापलूस और चमचे ऐसी आवाज उठा कर आपको भ्रम मे डालते रहेंगे। सच्चाई तो यह है कि न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका मिलकर भी सर्वोच्च नहीं हो सकते क्योकि सर्वोच्च तो होता है लोक और उसका व्यवस्थापक होता है तंत्र। ये तीनो तो तंत्र के भाग मात्र है। फिर सर्वोच्चता की भावना क्यो और कैसे?

अंत मे मेरा अपने पाठक बंधुओ से आग्रह हे कि आप तंत्र की किसी भी इकाई की सर्वोच्चता की सोच को लगातार कमजोर करने का प्रयास करें क्योकि यह भावना लोक को परेशान करन वाली होगी। यदि ऐसी बातें उठती है तो हम तर्क पूर्ण तरीके से उसकी समीक्षा करे तभी भारत मे वास्तविक लोकतंत्र दिखाई दे सकता है। हमे समझना ही होगा और समझाना भी होगा कि तानाशाही, लोकतंत्र और लोक स्वराज्य बिल्कुल अलग अलग व्यवस्थाएँ है। तानाशाही मे सत्ता का केन्द्रीयकरण होता है, लोकतंत्र मे विकेन्द्रीयकरण और लोक स्वराज्य मे अकेन्द्रीय करण । समाजवाद, राष्ट्रवाद, साम्यवाद आदि केन्द्रीयकरण की दिशा मजबूत करने वाले शब्द है, पंचायतीराज विकेन्द्रीयकरण की दिशा का तथा समाज सशक्तिकरण ग्राम सभा सशक्तिकरण लोक स्वराज्य का। सरकारीकरण, सरकारी शिक्षा , सरकारी स्वास्थ्य आदि केन्द्रीयकरण के विचार है, निजीकरण लोकतंत्र की दिशा है और समाजीकरण लोक स्वराज्य की ।मजबूत प्रधानमंत्री, सक्षम न्यायपालिका, सर्वोच्च संसद आदि केन्द्रीयकरण के पोसक है जो तंत्र से जुडा हर व्यक्ति दिन रात बोलता रहता है । ये शब्द पूरी तरह लोक स्वराज्य के तो विपरीत है ही लोकतंत्र के भी विपरीत ही है। तंत्र से जुडे लोग यदि ऐसी बात करे तो उनका स्वार्थ समझ मे आता है, तंत्र से उपकृत साहित्यकार कलाकार या मीडिया

कर्मी की भी मजबूरी समझी जा सकती है किन्तु स्वतंत्र और प्रबुद्ध विचारक ऐसे तर्क देगे तो कठिनाई होगी। हमे चाहिये कि हम मजबूत न्यायपालिका जैसे शब्दो पर फिर विचार करें।

गरीबी रेखा और राजनैतिक तिकड़में

चाहे टी बी देखिये अथवा अखबार, गरीबी रेखा की चर्चा अवश्य मिलेगी और एक पक्षीय मिलेगी। सुप्रीम कोर्ट में योजना आयोग ने शपथपत्र देकर कहा है कि सरकार की नजर में गरीबी रेखा का मापदण्ड गांव में छब्बीस रूपये तथा शहर में बत्तीस रूपये होना चाहिये। योजना आयोग के इस सुझाव पर चारों ओर से विरोध के स्वर उठने लगे। मुख्य विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी द्वारा विरोध करना स्वाभाविक था। उसे उचित अनुचित से मतलब ही क्या है। सरकार के विरूद्ध कोई भावनात्मक विरोध की बात उठती है तो भारतीय जनता पार्टी द्वारा लाभ उठाना गलत नहीं कहा जा सकता। अन्य विपक्षी दलों द्वारा भी विरोध करना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रीय सलाहकार समिति के सदस्यों द्वारा भी विरोध प्रकट करना कोई अप्रत्याशित घटना नहीं कही जा सकती क्योंकि उनका तो अस्तित्व ही मनमोहनसिंह जी की टीम को बदनाम करने पर टिका रहता है। वे कोई भी ऐसा मौका नहीं छोड़ सकते जो गरीबों के नाम पर भावनात्मक उबाल ला सकता है और जिस उबाल से मनमोहनसिंह जी की टीम विवादों में पड़ती हो। सच्चाई यह है कि उनको तो सोनिया जी ने इसी काम के लिये बनाया ही है कि चाहे गिलास कितना भी भरा जाये किन्तु शेष बचे गिलास के खाली भाग पर ही सारी चर्चा केन्द्रित करके सरकार को लगातार कटघरे में खड़ा करते रहना है। यह समिति लगातार अपना कार्य सफलता पूर्वक कर भी रही है। यदि हम गंभीरता पूर्वक सोचें तो यह पूरी की पूरी कमेटी राहुल गांधी का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से एक गैर सरकारी एजेन्ट का काम ही करती रहती है। यह कमेटी सरकार के सामने राहत के बड़े बड़े ऐसे सुझाव पेश करती है जो पूरी अर्थ व्यवस्था को ही चौपट कर सकते हैं किन्तु यह कमेटी कभी यह सुझाव नहीं देती कि बजट कैसे बनाना हैं। यही कारण है कि योजना आयोग के इस सुझाव का विरोध करने में अरूणा राय सबसे उपर दिखीं। मैने सरकार से आर्थिक सुविधाएँ बढ़ाने की बढ़ चढ़ कर मांग करने में भी इस कमेटी को सकिय पाया और मानवाधिकार की मांग में भी। किन्तु आज तक इस कमेटी ने कभी आतंकवाद के समाधान के लिये एक भी सलाह नहीं दी जैसे कि आतंकवाद न राष्ट्रीय समस्या है न ही उनसे संबंधित है।

मीडिया ने भी अपना रेटिंग बढ़ाने में इस सुझाव का खूब उपयोग किया। टीबी में यह बताने की होड़ मची थी कि बत्तीस रूपये में कितना सामान मिल सकता है। यहॉ तक कि सूची बताने वाले टीबी चैनलो में यहॉ तक बताते रहे कि बत्तीस रूपये में तो आधा लीटर से भी कम पेट्रोल आता है, अथवा बत्तीस रूपये में आधा किलो से भी कम सेव या अनार आता है। प्रचार से तो ऐसा लगता है जैसे गरीबी रेखा के नीचे के लोगों का सेव अनार ही मुख्य भोजन है और पेट्रोल ही प्रमुख आवश्यकता। नये नये भावनात्मक शीर्षक बनाकर अखबारों में सम्पादकीय या लेख पकाशित होने लगे। हरिभूमि ने ओंकार चौधरी जी का लेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था गरीबों के साथ भद्दा मजाक। नवभारत तेइस सितम्बर ने ''नई परिभाषा से गरीबों के भी छूटेंगे छक्के'' शीर्षक से समाचार प्रकाशित किया। नवभारत ने तो समाचार को ज्यादा आकर्षक बनाने के लिये लिख दिया गया कि उन्नीस रूपया साठ पैसा मासिक खर्च पर्याप्त बताती है सरकार। जबकि सच्चाई यह है कि उन्नीस रूपया साठ पैसा मासिक खर्च न होकर दैनिक का प्रस्ताव है किन्तु अखबार और टीवी तो समाचार को ज्यादा से ज्यादा आकर्षक बनाने की प्रतिस्पर्धा में लगे हैं भले ही समाचार के आंकड़े सही हों या गलत।

विपक्षी दल, मीडिया, सोनिया जी की टीम यदि गरीबी रेखा पर भावनात्मक उबाल पैदा करें तो कुछ कुछ समझ में आता है किन्तु केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य जयराम रमेश अथवा एन्टोनी जी असंतोष व्यक्त करें तो बात गंभीर बन जाती है। क्या वास्तव में सरकार ने गरीबों के साथ कोई अन्याय किया है? क्या वास्तव में सरकार ने गरीबों से कोई ऐसी सुविधा घटा दी या छीन ली है जो उन्हें प्राप्त थी? आखिर इतना बड़ा बवंडर क्या है? सरकार उत्तर क्यों नहीं दे रही? एक भी व्यक्ति स्पष्ट क्यों नहीं कर रहा कि यथार्थ क्या है?

गरीबी रेखा एक ऐसी राज्य निर्मित काल्पनिक सीमा रेखा है जो देश की आबादी में से गरीब या अतिपिछडों को अलग करती है। यह कहना बिल्कुल गलत है कि गरीबी रेखा से उपर का हर व्यक्ति अमीर ही है। अमीर तो बहुत कम लोग होते है बाकी लोग सामान्य की श्रेणी मे आते है भले ही वे गरीबी रेखा के बाहर हो। विश्व स्तर पर इस सीमा रेखा का मापदण्ड इक्कीस सौ से चौबीस सौ कैलोरी प्रतिदिन के भोजन के समकक्ष माना जाता है। राज्य का कर्तव्य है कि वह गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने वाले नागरिकों का जीवन स्तर इस तरह सुधारे कि उन्हें चौबीस सौ कैलोरी से ज्यादा प्राप्त होने लगे। कैलोरी का आकलन कुछ भोजन की वस्तुओं के मूल्यों का औसत निकाल कर किया जाता है। चूंकि रूपये का मूल्य हमेशा बदलता रहता है इसलिये समय समय पर मूल्यों का औसत भी बदलता रहता है किन्तु इक्कीस सौ से चौबीस कैलोरी का मापदण्ड नहीं बदलता।

कुछ देशों के नागरिकों का जीवन स्तर इतना उंचा हो जाता है कि वहॉ कैलोरी का मापदण्ड छोटा पड़ जाता है। तब ये देश इस मापदण्ड में कुछ शिक्षा स्वास्थ्य जोड़कर इस रेखा का आकलन शुरू कर देते हैं। आज अमेरिका ब्रिटेन आदि में भी गरीबी का आकलन नई सीमा बना कर किया जाता है। किन्तु भारत के आम नागरिकों का जीवन स्तर उस सीमा तक नहीं बढ़ा है कि कैलोरी वाली गरीबी रेखा छोटी पड़ जाये तथा उसे नये ढंग से संशोधित करना पड़े। क्योंकि जब तक इस कैलोरी के आधार पर बनी सीमा रेखा से नीचे

की आबादी नगण्य न हो जाये तब तक सीमा रेखा का पुनरीक्षण औचित्य हीन होता है भले ही मुद्रा स्फीर्ति के आधार पर उसके मूल्यों का पुनरीक्षण होता रहे। सन् अठहत्तर में भाजपा सरकार थी। उस समय गरीबी रेखा का मापदण्ड दो रूपया ग्रामीण और दो रू0 चालीस पैसे प्रतिदिन शहर का था। सन् दो हजार तक यही सीमा रेखा बढ़कर ग्यारह रूपया और पन्द्रह रूपया हुई। दो हजार से दो हजार चार तक फिर अटल जी प्रधान मंत्री रहे तब भी यह सीमा रेखा ग्यारह से पन्द्रह के बीच ही थी। दो हजार पांच में सीमा रेखा संशोधित होकर साढ़े बारह रूपये ग्रामीण और उन्नीस रूपये शहर की बनी। अब तक वही रेखा चली आ रही है। अब उस रेखा के पुनर्मूल्यांकन की योजना बनी।

इस योजना में सरकार ने एक सक्सेना समिति बनाई जिसने निष्कर्ष दिया कि भारत में आधी से ज्यादा आबादी बीस रूपये से कम पर जीवन यापन करती है। सरकार इतनी आबादी को सुविधाएँ देने में असमर्थ पा रही थी। अतः उसनें तेंदुलकर समिति बनाई जिसने रिपोर्ट दी कि छब्बीस से बत्तीस रूपये के बीच गरीबी रेखा बनाने से करीब सैंतीस प्रतिशत आबादी तक गरीबी रेखा में शामिल हो सकती है। तेंदुलकर समिति ने समझा कि कैलोरी के मापदण्ड को आंशिक रूप से बढ़ाकर उसमें कुछ शिक्षा स्वास्थ्य को जोड़ना सरकार के लिये संभव है क्योंकि कैलोरी के मापदण्ड से तो गरीबों की संख्या दस प्रतिशत से भी नीचे आ जायेगी। साथ ही भारत सरकार की आर्थिक स्थिति मनमोहनसिंह सरकार में इतनी मजबूत है कि इस कैलोरी के मापदण्ड को कुछ बढ़ाकर ऐसा बनाना उचित है कि लगभग एक तिहाई आबादी उस सीमा रेखा में लाभ उठा सके। यहीं से राजनीति का खेल शुरू होता है। सबसे पहले तो सुप्रीम कोर्ट इस सीमा रेखा विवाद में कूदता है क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने यह मान लिया है कि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में न्यायालय के लिये कोई सीमा रेखा है ही नहीं। सरकार द्वारा पेश गरीबी रेखा की परिभाषा के बाद विपक्ष को भी भय हुआ कि कहीं इसका श्रेय कांग्रेस पार्टी को न चला जाये। जिस अटल सरकार में यह सीमा रेखा साढ़े बारह से उन्नीस रूपये के बीच थी वही रेखा छः वर्ष बाद लगभग दो गुनी बढ़ने के बाद भी भाजपा द्वारा उसकी इतनी आलोचना राजनैतिक स्टन्ट के अलावा कुछ नहीं। किन्तु कुछ प्रमुख कांग्रेसियों द्वारा इसकी इतनी आलोचना से पता चलता है कि एक तो कांग्रेस पार्टी क भीतर का सत्ता संघर्ष अब सतह पर आने वाला है तथा कांग्रेस पार्टी के कुछ प्रमुख लोग भी सस्ती लोक प्रियता के लिये छटपटा रहे हैं। सब जानते हैं कि मनमोहन सिंह इतना विरोध न झेलकर इस छब्बीस बत्तीस की रेखा को संशोधित करने को तैयार हो ही जायेंगे। ऐसी हालत में उसका श्रेय लेने की दौड़ से बाहर रहना ठीक नहीं।

स्पष्ट है कि गरीबी रेखा की सुविधा लेना गरीबी रेखा से नीचे वालों का अधिकार न होकर राज्य का कर्तव्य मात्र होता है। सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है और जो राज्य का दायित्व है उतना ही नागरिकां का अधिकार होता है। राज्य जो कुछ भी गरीबी रेखा से नीचे वालो को सुविधाएँ देता है वह राज्य की आर्थिक स्थिति, तथा उसकी प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है। यह इस देश के नागरिकों का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि यहॉ के कुछ निठल्ले लोग भावनात्मक मुद्दे उठा उठा कर सुरक्षा और न्याय पर से ध्यान हटवाते रहते हैं तथा सरकारें भी सस्ती लोक प्रियता के चक्कर में ऐसी मांगे मान लेती हैं। पूरे भारत में आतंकवाद, नक्सलवाद, अपराध बढ़ रहे हैं, यहॉ तक कि अनियंत्रित हो रहे हैं किन्तु भारत के अनेक प्रदेशों में पुलिस बल के स्वीकृत पद अब भी खाली पड़े हैं। सरकारों के पास इतना बजट नहीं कि वे इन पदों को भी भर सकें। न्यायालयों में मुकदमों के अंबार लगे हैं और न्यायालय में जजों के पद खाली हैं। निठल्ले लोग गरीबी रेखा और शिक्षा स्वास्थ्य के लिये बड़ी बड़ी मांग करते रहते हैं और सरकारें दूसरे बजट काट काट कर उनका मुंह बन्द करती रहती है। मुझे तो यही पता नहीं चलता कि गरीबों की संख्या बढ़वाने से गरीबों को लाभ होगा कि हानि। सरकार का एक निश्चित बजट है। उस बजट की सुविधाएँ चाहे आप बीस प्रतिशत आबादी में बंटवा दें या पचास प्रतिशत में। अभी भारत में करीब बीस प्रतिशत ऐसी आबादी है जो बीस रूपये से भी कम में जीवन यापन करती है। करीब बीस प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो बीस से तीस के बीच हैं और यदि इस तीस रूपये की सीमा को बढ़ाकर चालीस कर दें तो यह आबादी चालीस से बढ़कर साठ हो जायेगी। स्वाभाविक है कि यदि गरीबी रेखा में बीस प्रतिशत आबादी को बढ़ाकर साठ प्रतिशत कर दें तो बीस प्रतिशत गरीबों की सुविधाएं या तो घटेगी या कम से कम और तो नहीं ही बढ़ेगी। हमारी मांग तो यह होनी चाहिये कि हम पहले बीस रूपये से कम वालों को गरीबी रखा से बाहर निकालने में सफल हो जायें तब हम बीस से तीस वालों की योजना बनायें। किन्तु न तो मांग करने वालों को सोचना है न ही सरकार को। ये लोग मांग करेंगे और सरकार मान लेगी? बेचारा गरीब सौ साल तक बाहर निकल ही नहीं पायेगा।

सरकारों को भी गरीबों की संख्या बढ़ाने में मजा आता है। यदि यह संख्या बढ़ी रहेगी तभी तो हम दुनिया भर से कुछ भीख मांग सकेंगे कि हम बहुत गरीब हैं। अन्यथा हमारी मांगने की ताकत में दम नहीं रहेगा। अब इस गरीबी रेखा की भूल भुलैया में भारत के आम आदमी को समझ में ही नहीं आता कि वह क्या करे? जब गरीबी शब्द ही सत्ता का हथियार बन जायेगा तब भ्रम फैलना तो स्वाभाविक ही है। हर कोई इस भ्रम का लाभ उठाना चाहता है किन्तु कोई इस भ्रम को दूर नहीं करना चाहता। यही कारण है कि कांग्रेस के लोग भी इस मामले को साफ नहीं कर रहे क्योंकि उन्होंने भी तो जीवन भर इस भ्रम का ही लाभ उठाया है। मैं चाहता हूँ कि एक बार इस मुद्दे पर व्यापक चर्चा होकर धुंध छंट जाना ही उचित होगा।

कार्यालयीन प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न–विस्फोट डाट काम मे छपे समाचार के अनुसार राजस्थान के भरतपुर जिले के गोपालगढ़ गांव म 14 सितंबर को हुई पुलिस फायरिंग मे मारे गये लोगों और घायलो मे अधिकांश के अल्पसंख्यक समुदाय के होने से पुलिस व प्रशासन की निष्पक्षता पर संदेह पैदा होता है। मानव अधिकार संगठन पीयुसीएल की अंतरिम जांच ने भी इस ओर इशारा किया है। पीयूसीएल की ओर स गोपालगढ़ भेजी गई जांच दल की सदस्य और संगठन की महासचिव कविता श्रीवास्तव कहती है कि हमारी चिन्ता इस बात को लेकर सबसे अधिक है कि किस प्रकार पुलिस ने दो लोगों के आपसी विवाद मे भाग लेते हुए एक खास समुदाय को निशाना बनाया। गोपालगढ़ की घटना मे इस वीभत्स घटना मे आठ लोग मारे गए और अधिकारिक रूप से 23 लोग घायल हुए । जिन आठ मृतकों की शिनाख्त हुई है, वे सभी अल्पसंख्यक समुदाय से आते है। 23 लोग घायल हुए, इसमें से 19 लोग अल्पसंख्यक समुदाय के है। यदि पुलिस ने सही कदम उठाते हुए गोलीबारी की है, तो यह एक पहेली है कि मरने वाले सभी एक ही समुदाय के कैसे हो सकते है। पीयुसीएल का कहना है कि पुलिस ने 219 राउंड गोलियां चलाई । गोलीबारी से पहले सिर्फ आंसू गैस के गोले छोडे जाने का उल्लेख है लेकिन लाठीचार्ज या रबर बुलेट का कोई जिक्र नही आया है।

पीयुसीएल ने अपनी रिपोर्ट मे कहा कि मृतको और घायलो की स्थिति देखकर इस बात का साफ अंदाजा लगाया जा सकता है कि सिर्फ गोलीबारी ही नही बल्कि लोगों को निशाना बनाकर उन्हे जलाया भी गया । यह जांच करने की जरूरत है कि यह किसने किया। चूंकि गोलीबारी के बाद मस्जिद परिसर पुलिस के नियंत्रण मे था । प्रत्यक्षदर्शियों के आरोप है कि इस घटना के पीछे स्थानीय पुलिस के अलावा गुर्जर नेता और आरएसएस बजरंग दल और विहिप के कार्यकर्ता शामिल हो सकते है। आरोप यह है कि ये लोग घटना से पहले थाने मे थे जहां दोनो समुदाय के बीच समझौते के लिये बैठक चल रही थी तथा इन्ही लोगो ने दबाव बनाकर कलेक्टर से फायरिंग के आदेश लिखवाये । इसकी भी जांच करवाए जाने की आवश्यकता है।

रिपोर्ट मे आगे कहा गया है कि गोपालगढ स्थित मस्जिद की दीवारों पर गोलियों के निशान थे। हर चीज को तहस नहस कर दिया गया था। खून के धब्बे चारों और फैले हुए थे। लोगों को मारने के बाद घसीटने के भी सबूत मिले। ऐसा कैसे हो सकता है कि पुलिस के नियंत्रण मे जो स्थान है उसमे दूसरे समुदाय के कुछ लोग घुसकर मस्जिद को नुकसान पहुचाएं और लाशे और लोगों को जिंदा जला दे। राजस्थान पीयूसीएल के अध्यक्ष प्रेम कृष्ण शर्मा कहते है कि यदि समय रहते प्रशासन गंभीरता दिखाते हुए हजारो की भीड पर काबू करने की कोशिश करता तो बेगुनाहों की जान नहीं जाती। लेकिन पुलिस ने भीड को बढ़ने दिया। पुलिस फायरिंग शुरू होने से पहल दो समुदाय की आपसी झडप मे एक भी जान जाने की रपट नही है लेकिन प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार जब पुलिस ने फायरिंग की तो लोगो के मरने का सिलसिला जारी हुआ। गौरतलब है कि मामले की तह तक जाने के लिये पीयुसीएल ने एक जांच दल को 16 और 17 सितंबर को घटना स्थल पर भेजा । इस जांच दल मे कविता श्रीवास्तव दिल्ली मे प्रोफेसर योगेन्द्र यादव और प्रोफेसर शैल माया राम शामिल थे । इनके अलावा निशांत हुसैन, सवाई सिंह, वीरेन्द्र विद्रोही नूर मोहम्मद के साथ एडवोकेट रमजान चौधरी और गौरव भी थे सोमवार को जयपुर मे एक प्रेस वार्ता कर जांच दल ने इस रिपोर्ट को सार्वजनिक किया। हालांकि कांग्रेस पार्टी मुख्य सचिव और डीजीपी के बयान से सहमत नही है। कांग्रेस के प्रदेशाध्यक्ष डा0 चंद्रभान कहते है कि गोपरलगढ़ की घटना मे पुलिस प्रशासन की कमियां जरूर रही है। मै मुख्य सचिव और डी जी पो की इस बात से सहमत नही हूँ कि पुलिस प्रशासन की कमिया नही रहती है। उन्होने कहा कि यदि पुलिस प्रशासन पहले से सचेत होता तो इस घटना को टाला जा सकता था । इसलिये यह नही कहा जा सकता कि पुलिस और प्रशासन के स्तर पर कोई कमी नही रही।

उत्तर –पी यू सी एल की जांच की इस रिपोर्ट से तो मै सहमत हूँ कि पुलिस ने कार्यवाही करने मे देर कर दी। यदि पूर्व मे ही गोली चलाई गई होती तो एक दो ही लोग मरते और भीड छट जाती। जब भीड वेकाबू होती दिख रही थी तो भीड़ बढने की प्रतिक्षा न करके तत्काल कदम उठाने चाहिये थे। यदि और पहले ही बल प्रयोग हुआ होता तो बिना मरे ही सिर्फ घायलो तक ही मामला निपट जाता।

किन्तु मै पीयूसीएल की इस रिर्पोट का आशय नही समझा कि मरने वाले सिर्फ मुसलमान ही क्यो थे । यदि आक्रमणकारी भीड मुसलमानों की ही थी और हिन्दू डर के मारे भाग रहे थे तो मरने वालो मे हिन्दुओ का प्रतिशत बनाना क्यो आवश्यक था? क्या गोली चलाने मे भी आबादी के अनुपात का ध्यान रखना आवश्यक है?

यह प्रश्न भी समझ से परे है कि आपसी झगडे मे कुछ लोगों के मरने के पहले ही पुलिस ने गोली चला दी। जांच दल एक ओर तो कहता है कि पुलिस को भीड ज्यादा होने के पूर्व ही नियंत्रण करना चाहिये था दूसरी ओर जांच दल यह भी कहता है कि आपसी टकराव मे कोई मरा ही नही तो पुलिस ने गोली क्यो चलाई। जांच दल को इस विरोधाभासी रिपोर्ट को स्पष्ट करना चाहिये ।

जांच रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट होता है कि थाने मे बैठकर धर्म के दो ठेकेदर समूहो के बीच समझौता वार्ता चल रही थी। समझौता वार्ता के बीच ही मुसलमानों की भीड अनियंत्रित हुई जिस पर गोली चलाने का आदेश दूसरे पक्ष के ठेकेदारो ने दिलवाया । प्रश्न उठता है दूसरे पक्ष को क्या करना चाहिये था? क्या उन्हे स्वयं जाकर भिड जाना चाहिये था ? क्या उन्हे चुपचाप तमाशा देखना चाहये था? मेरे विचार से तो

उन्होने प्रशासन पर कार्यवाही करने हेतु दबाव बनाया तो ठीक ही किया । रिपोर्ट स्वयं कहती है कि भीड बेकाबू हो गई थी और कार्यवाही करने मे देर हुई है।

वैसे पी यु सी एल की रिपोर्ट तो पूरी तरह एक पक्षीय और मुसलमानो के पक्ष मे हुआ ही करती है मै इस जांच दल के अनेक सदस्यो से व्यक्तिगत रूप से परिचित हूँ । कविता श्रीवास्तव सवाई सिंह प्रोफेसर योगेन्द्र यादव का एकपक्षीय दृष्टिकोण कौन नही जानता । नक्सलवाल या मुसलमानो के पक्ष मे बोलने के लिये तो ये जग प्रसिद्ध है । संभवतः ये वही सवाई सिंह है जो कहते तो अपने को सर्वोदयी है किन्तु गुजरात के चुनावो मे इनकी टीम ने जाकर ऐसा हिन्दू विरोधी प्रचार किया कि इनके एक पक्षीय प्रचार के कारण वहॉ हिन्दूओ के वोट इकठ्ठे होते गये । मेरे मित्र है। मैने उन्हे याद दिलाया था कि हम आप खादी पहनकर घोषणा करते है कि हमारा चुनावी राजनीति से कोई मतलब नही है तो फिर चुनावी राजनीति मे प्रत्यक्ष प्रचार और दूर रहने की घोषणा का ढोग एक साथ क्यो? कविता श्रीवास्तव तो छत्तीसगढ की नक्सली जांच मे भी हमेशा रहती ही है। कोई नया चेहरा तो है नही । मुझे तेा आश्चर्य हुआ कि हमारे स्वामी अग्निवेष जी इस टीम से बाहर कैसे रह गये? वे भी रहते तो कोटा पूरा हो जाता।

मैने भी घटना की जानकारी ली । भारत मे तीन गुट वर्चस्व स्थापित करने मे बल प्रयोग को बुरा नही मानते। (1) संघ परिवार (2) साम्यवादी (3) मुसलमान। संघ परिवार तो शत प्रतिशत ही इस योजना मे सक्रिय रहता है। साम्यवादी जब तक मजबूत नही होते तब तक प्रत्यक्ष टकराव से बचते3 है। मुसलमानो का बहुमत लगभग हर समय ही मरने मारने को तैयार रहता है। ये तीन गुट आपस मे मरे कटे तो शान्ति प्रिय लोगों को चिन्ता भी नही करनी चाहिये क्योकि यह वर्चस्व की लडाई है और यह तो राजनैतिक पेशा है। गोपालपुर मे जिधर हिंसक मुसलमान इकठ्ठे हुए उधर संघ परिवार के लोग तो थे नही क्योकि वे सब तो थाने मे बैठ थे। यदि पुलिस गोली नही चलाती तो दंगा द्विपक्षीय न होकर एक पक्षीय ही होता और शान्तिप्रिय हिन्दू मारे जाते । इसलिये सरकार को यह कदम उठाना पडा। यदि दंगा द्विपक्षीय होता है और संघ परिवार तथा मुसलमान दंगाई आपस मे मरते मारते है तो पुलिस तटस्थ भाव से रहती है किन्तु गोपालगढ का स्वरूप भिन्न होने से पुलिस बधाई की पात्र है कि उसने कार्यवाही की । वैसे पता चला कि पुलिस पहले ही बल प्रयोग के पक्ष मे थी किन्तु सरकार ने तब तक बल प्रयोग की अनुमति नही दी जब तक भीड बिल्कुल बेकाबू नही हो गई । पहले तो आदेश देने मे देर हुई और अब दोष पुलिस पर डालने की तैयारी है।

हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक शान्ति के लिये कई प्रयोग भारत मे हो रहे है। आम तौर पर मुसलमान संगठन के आधार पर अपने को बाध और हिन्दू को गांय के रूप मे देखता हैं। वह मानता है कि गाय को खाना बाध का प्राकृतिक अधिकार है। अब इसके दो ही समाधान है। या तो बाध की प्रवृत्ति बदल कर गाय कर दी जावे अथवा गाय को ही बाध बना दिया जावे । संघ परिवार गाय को बाध बनाना चाहता है जो संभव नही । एक प्रयोग बिहार मे नीतिश कुमार ने किया कि किसी तरह मुसलमानों को समझा दिया कि झगडना ठीक नही । नीतिश कुमार अपने प्रयोग मे सफल है। बिहार मे कोई साम्प्रदायिक दंगा नही हो रहा। एक प्रयोग मोदी जी ने गुजरात मे किया। अब वहॉ का मुसलमान भी मोदी की जय जयकार कर रहा है। मोदी का प्रयोग अच्छा है या बुरा यह अलग विषय है। कन्त, है तो सफल। कांग्रेस पाटी इस मामले मे ढुलमुल है। जब से गृहमंत्री चिदम्बरम बने है तबसे आतंकवाद दबा । बाटला हाउस एनकाउन्टर मे साम्प्रदायिक मुसलमानों के लाख छाती पीटने के बाद भी चिदम्बरम टस से मस नही हुए। परिणाम हुए कि आंतरिक बम ब्लास्ट भी बन्द हो गये। यह बात राहुल जी को पसंद नही आई । उन्हे शान्ति व्यवस्था की अपेक्षा वोट ज्यादा महत्वपूर्ण दिखा । दिग्विजय सिंह ने युवराज की शह पर चिदम्बरम को मात दे दी। फिर से साम्प्रदायिकता भी सर उठाने लगी और नक्सलवाद भी। मैने निष्कर्ष निकाला है कि साम्प्रदायिकता को कभी संतुष्ट करना संभव नहीं है। उसे तो सिर्फ कुचलना ही संभव है चाहे वह साम्प्रदायिकता इस्लामिक हो या संघ परिवार की। कांग्रेस पार्टी को देर सबेर समझना ही होगा अन्यथा देश अशान्त ही रहेगा। गोपालगढ़ की घटना से भी कांग्रेस पार्टी को सबक लेना चाहिये। भारतीय जनता पार्टी के कई मुख्य मंत्री अपना रेपुटेशन सुधारते जा रहे है। कांग्रेस पार्टी के मुख्यमंत्रियों मे अशोक गहलोत ठीक दिशा मे काम कर रहे है। अब यदि उन्हे भी परेशान किया गया तो भारत मे कांग्रेस के नाम पर सिर्फ दिग्विजय सिंह जी ही दिखाई देगें । जिन्हे पागलखाने भेजने की सलाह अन्ना जी कई बार दे चुके है।

पत्रोत्तर

1.श्री दीनानाथ वर्मा रायपुर छत्तीसगढ

ज्ञान तत्व दो सौ उन्नीस पढ़ा । बहुत ही अच्छा लगा। सभ्रान्त महिलाओं की नकली पीडा घातक शीर्षक लेख बहुत ही सामयिक और सटीक है। आपका यह निष्कर्ष भी बिल्कुल ठीक दिखता है कि भारत की वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था गरीबो, शरीफो , श्रमजीवियों तथा सामान्य नागरिकों के शोषण के उद्देश्य से अपराधियों पूंजीपतियों , बुद्धिजीवियों तथा राजनेताओ का मिला जुला षडयंत्र है। आपके इस निष्कर्ष पर व्यापक चर्चा होनी चाहिये।

आचार्य पंकज जी का पत्र भी इसी अप्रेल माह मे प्राप्त हुआ। उन्होने लिखा कि अन्ना जी के पांच दिवसीय आंदोलन मे शामिल होकर धन्य हुआ । एक स्थान पर बैठकर प्रतिवद्ध गांधीवादी ने पूरे देश को

झकझोर दिया। व्यवसाय और संघर्ष एक साथ संभव नही है । महर्षि दयानंद जी उद्योग नही चलाते थे। बाबा से सेठ बने लोगों को गांधी के सपूत अन्ना हजारे ने आज की तारीख मे बहुत छोटा कर दिया है। व्यवस्था परिवर्तन की बात करके अवस्था परिवर्तन करने वाले बेनकाब हो गये है।

आपसे निवेदन है दोनो ही बिन्दुओ पर समीक्षा करने की कृपा करे।

उत्तर– आपका पत्र अप्रेल माह मे ही प्राप्त हो गया था। पहले प्रश्न का उत्तर तो तत्काल संभव था किन्तु मई जून मे बाबा रामदेव जी तथा अन्ना हजारे जी के प्रयास और परिणाम जारी थे इसलिये बिलम्ब करना ठीक समझा गया।

अब बाबा रामदेव और अन्ना हजारे के प्रयासो का प्रथम चरण पूरा हो चुका है। अप्रेल माह मे आचार्य पंकज जी ने जो कुछ लिखा था वह दोनो आंदोलन से सही सिद्ध हुआ है। मै भी प्रारंभ से ही लिखता रहा हूँ कि रामदेव जी को स्वयं कोई राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन का आंदोलन नही करना चाहिये क्योकि उन्हे शरीर विज्ञान का तो ज्ञान है किन्तु न तो उन्हे समाज विज्ञान का कोई ज्ञान है न ही राजनीति विज्ञान का । फिर भी वे नही माने और संघर्ष मे कूद पडे जिसका परिणाम आप सबने देख लिया। वे एक सन्यासी है और सन्यास की कुछ सीमाएँ है जो उन्होने ध्यान नही रखा। सन्यासी को सच और झूठ के प्रति विशेष सतर्क रहना चाहिये । अब बाबा रामदेव जी ने नये सिरे से उस दिशा मे बढना शुरू किया है। उन्होने एक लाख कि. मी. की यात्रा और चारसौ लाख करोड के विदेशी धन का अनुमान व्यक्त किया है। यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन तीन सौ कि0 मी0 यात्रा करे तथा लगातार करता रहे तो एक वर्ष मे एक लाख कि0 मी0 पूरा होगा। रामदेव जी की यात्रा तो रूक रूक होनी है। क्या गणित है पता नहीं। चार सौ लाख करोड भी बेमतलब की बाते है। यदि बाबा कुछ कम बोले सोच समझकर बोले तो ज्यादा अच्छा होगा।

अन्ना जी ने सोलह अगस्त से शुरू आंदोलन मे अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी है। अतः उस पर कुछ लिखना ठीक नही। अन्ना जी का हर कदम सुविचारित और योजनाबद्ध है जबकि रामदेव जी का अविचारित अविवेक पूर्ण।

फिर भी रामदेव जी जो कुछ कर रहे है वह अन्ना हजारे जी से कम महत्व का नही। सारे विश्व मे योग विज्ञान तथा आयुर्वेद को जिस सहज सरल विधि से रामदेव जी ने स्थापित किया उसका दसवां हिस्सा भी अन्ना हजारे जी नही कर पाये। रामदेव जी का कार्य कुल मिलाकर अन्ना जी के समकक्ष ही है। मेरे मन मे दोनो के प्रति समान सम्मान है यद्यपि दोनो की विशेषताएं अलग अलग है। रामदेव जी वर्तमान मे जो यात्रा कर रहे है उस यात्रा से भी कोई नुकसान तो होने वाला नही है भले ही कुछ लाभ हो या न हो।

आपने वर्तमान राजनैतिक षणयंत्र की चर्चा की । मेरा पूर्व मे भी विचार था और अब भी है कि यह व्यवस्था शरीफो गरीबों श्रमजीवियों ग्रामीणों के विरूद्ध अपराधियों पूंजीपतियों बुद्धिजीवियों शहरी लोगों का मिला जुला षडयंत्र है। आप कुछ बातों पर गंभीरता से सोचिये।

(1) भारत मे अवैध बंदूक पिस्तौल रखना अवैध गांजा रखने से कई गुना छोटा अपराध है। बंदूक पिस्तौल वाले की जमानत आसान है किन्तु गांजा वाले की कठिन । बंदूक पिस्तौल रखले वाले या डकैती करने वालों को संदेह का लाभ मिलेगा किन्तु अवैध अनाज या गांजा वाले को नही क्योकि हत्या का अपराध प्रमाणित करना सरकार की जिम्मेदारी है किन्तु गांजा या अनाज के मामले मे स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करना हमारी जिम्मेदारी है सरकार की नही।

(2) भारत मे गरीब लोग जो वस्तु ज्यादा उपयोग करते है उस पर प्रत्यक्ष सब्सीडी देकर अप्रत्यक्ष कर उससे भी ज्यादा लिया जाता है जो उस गरीब को कभी पता ही नही चलने दिया जाता। दूसरी ओर अमीर लोग जो वस्तु ज्यादा उपयोग करते है उस पर प्रत्यक्ष मूल्य वृद्धि तथा अप्रत्यक्ष सब्सीडी दी जाती है। साइकिल पर प्रति साइकिल चार सौ रूपया टैक्स तथा रसोई गैस पर छूट मिलती है । लकडी पर भारी कर लगाकर मिट्टीतेल पर छूट मिलती है। प्रचारित किया जाता है कि लकडी का धुआं पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है किन्तु मट्टी तेल नही पहुचाता । सभी प्रकार के अनाज दाले खाद्यतेल आदि पर भारी कर लगते है और टेलीफोन, कम्पयूटर आदि को सस्ता किया जाता है।

(3) कृत्रिम उर्जा को सस्ता किया जा रहा है जिससे आवागमन सस्ता हो रहा है। बदले मे ग्रामीण उत्पादन वन उत्पादन से वसूली हो रही है। ग्रामीण रोजगार घट रहे है और शहरी रोजगार बढ रहे हे। बीडी पत्ता सालवीज ग्रामीण उत्पादन है तथा श्रमजीवी का कार्य है । सरकार ऐसी वस्तुओ पर भारी कर लगाती है पशु खली खाते है और गोबर करते है जो खाद के काम आता है। खली भूसा पशु चारा पर टैक्स लगाकर ट्रेक्टर या अंग्रेजी खाद को छूट दी जाती ह। ग्रामीण श्रमजीवी अर्थ व्यवस्था को चौपट किया जा रहा है और शहरी अर्थ व्यवस्था को बढाया जा रहा है।

(4) कृत्रिम उर्जा को सस्ता करके श्रम मूल्य वृद्धि को रोका जा रहा है महत्व घट रहा है और मशीनो का बढ रहा है

(5) पूरे भारत मे शिक्षा का महत्व बढ़ रहा है और ज्ञान घट रहा है । शिक्षा और ज्ञान का अंतर समाप्त किया जा रहा है।

हमलोगों ने कई वर्षो के शोध के बाद ही उपरोक्त निष्कर्ष निकाले है । हम चाहते है कि इन निष्कर्षो पर एक बहस छिडे जिससे यथार्थ समाज के समक्ष आ सके।

2. सरस्वती नंदन मानव कानपुर उत्तर प्रदेश

भारत वर्ष आजाद हो गया, सविधान के अनुसार भारत सरकार, लोकतंत्र, परिवार से पार्टी, तथा राजनीति का व्यवसाय ,उद्योग राजनेताओ के सहारे होने लगा। देश की आजादी, जनता की अपनी सरकार, संविधान का सम्मान अलग हो गया। देश मे कामन हो गयी नयी व्यवस्था नई परिभाषा । पर कुछ प्रश्न आज भी उत्तर की प्रतिक्षा कर रहे है।

(1) भारत सरकार शपथ ग्रहण करती है संविधान के नाम पर और जन प्रतिनीधि की आड मे कार्य किया जाता है, पार्टी प्रतिनिधियों के रूप मे सत्तारूढ दल के नाम पर। सभी राजनीतिक दल वर्तमान व्यवस्था चला रहे है।

(2) विधायिका का कार्य सरकार बनाना न कि स्वयं ही सरकार बन जाना।

(3) चुनाव के द्वारा लोकतंत्र का नाटक चल रहा है। प्रत्याशी जनता से आता नही पार्टी प्रत्याशी जनता मे जाता नही जनता वोट डालेगी , ज्यादा वोट वाला विजयी होगा । सत्तापक्ष (राष्ट्रपति , प्रधानमंत्री चुनाव की मिली भगत) सत्ता सुख भोगने वाला (2) सत्ता का पक्ष सन्त के सपने देखने वाला इसमे विपक्ष की भूमिका ही नही है।

(4) अ. विधायिका के सभी पद संवैधानिक है। समान नागरिकता का विधान है पर माननीय राष्ट्रपति जी प्रथम नागरिक कार्यपालिका की मुखिया तथा संवैधानिक प्रमुख पर इन्हे संविधान के बाहर तथा पद के अंदर रखा गया है।

ब– प्रधानमंत्री, सांसद, मंत्री संसद मे रहेंगे जनता के लिये मनमाना कानून बनायेगे और स्वयं कानून से बाहर रहेंगें । देश का नागरिक संविधान से अलग नही रह सकता है। किन्तु यदि इन सबकी स्वतंत्रता मे संविधान या कानून बाधक होता है तो उसे ये सब मिलकर बदलने को भी तैयार रहते है।

स– सरकार और संसद , राष्ट्रहित जनहित के लिये है। स्वहित (स्वार्थ –लालच) का स्थान ही नही है।

द –सांसद /विधायक वेतन भत्ता मकान, मेडिकल , वाहन ऋण यात्रा भत्ता लेते है अतः ये कर्मचारी है। कर्मचारी चुनाव नही लड सकते हम लाभ लेने के लिये नही लड सकते हम लाभ लेने के लिये लाभ के पद की परिभाषा बदल देगें तो क्या लाभ के मूल स्वभाव पर अंतर पडेगा।

य– हमारे राजनेता ईमानदार है। संसद मे एक दिन हस्ताक्षर हो गये पेंसन पक्की हो गयी। जनता जागरूक हो चुकी है। जनता ने इन्हे कभी नही चुना है। ये अपने को जनता से चुनवाते है।

5: अ– विधायिका का उद्देश्य, भूमिका , कार्यक्षेत्र सीमा, शिक्षा – आयु (आने की 35 वर्ष तथा सेवानिवृत्ति आयु 65 वर्ष) निश्चित हो रिटायर आई ए एस आई पी एस को राजनीति मे आने से तत्काल रोका जाय

व–विधायिका का कार्य संवैधानिक है विकास का कार्य सरकार व कार्य पालिका का है। विधायिका कानून का ज्ञान व रूचि न होने के कारण व्यवस्था मे लग गयी है।

स– यह आवश्यक हो गया है कि सभी संवैधानिक पदो पर चुनाव प्रत्यक्ष हो । अप्रत्यक्ष चुनाव पूणतः समाप्त किया जाय। माननीय प्रधानमंत्री जी का बोझ हल्का कर माननीय राष्ट्रपति जी तथा माननीय उपराष्ट्रपति जी भी राष्ट्रहित मे योगदान करे। सक्रिय भूमिका का निर्वाह करे। माननीय राष्ट्रपति जी, न्याय परिषद के द्वारा न्यायपालिका, सचिवालय से कानून मंत्रालय तथा योजना मंत्रालय का कार्य देखे तो राष्ट्रहित ही होगा। माननीय उपराष्ट्रपति जी को राज्यसभा से अलग कर लोक परिषद के द्वारा विधायिका चुनाव आयोग तथा ग्रीह मंत्रालय के सभी जांच समितियां । यदि संभव हो तो देश का ही भला होगा।

सभी जांच एजेंसी जो कि न्यायिक अधिकार मुक्त है उनके प्रभारी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समकक्ष हो स्वतंत्र हो।

6. आज तक चुनाव मे सभी पार्टी चुनाव घोषणा पत्र घोषित करती है। मात्र चुनाव आयोग मे पंजीकरण करा लेने से इन्हे सरकारी खजाने के लुटाने का अधिकार कैसे मिल गया । राष्ट्रपति जी चुनाव की घोषणा तथा योजना आयोग द्वारा तैयार घोषणा पत्र भी घोषित करे। सत्तापक्ष व विपक्ष जनता को अपनी प्रगति को बताये । यह घोटाला है । आज तक चल रहा है।

7. 63 वर्ष बाद भी न्यायपालिका मे जिला जज उच्च न्यायालय , सर्वोच्च न्यायालय मे जज वकीलो मे से विधायिका की कृपा से आते है। यु पी एस सी मे आई ए एस की परीक्षा का प्रावधान नही है। सभी जिलो मे पूर्ण कालिक जिला निर्वाचन अधिकारी नही है क्योकि आई ए एस की परीक्षा भी नही होती है। नेता जनता से आना चाहिये जिसका जिला स्तर पर आर्थिक अपराधिक, सामाजिक रिकार्ड उपलब्ध हो।

राजनीतिक पार्टी पंजीकरण के बाद 10 वर्ष जनता मे कार्य करें।

प्रत्यासी 15–20 वर्ष जनता से संपर्क , सहायता सेवा, देश भक्ति व ईमानदारी का अनुभव रखता हो चुनाव खर्च शून्य प्रचार उसका अनुभव जनता ने उसकी छवि हो जिससे गरीब भी चुनाव का सपना देख सकता है।

चुनाव आयोग से राजनीति प्रारंभ होती है अतः कार्य की गतिविधि गठबंधन सभी संवैधानिक हो अंत मे वर्तमान स्थिति काआंकलन।

हम है सरकार हाथ मे है सत्ता
चाहे जितना वेतन लूं चाहे जितना भत्ता
भ्रष्टाचार की कानूनी विधि वेतन भत्ता पेंशन निधि

3 देश के युवा की राजनीति धनवान बनना है करो राजनीति
4. देश हो गया भूखा नंगा, भ्रष्टाचार की बह रही गंगा
5. देश के नेता कैसे हो गांधी–हजारे जैसे हो
अंत मे हम देश के उज्जवल भविष्य की कामना करते है। भगवान से अपनी संस्कृति संस्कार भाषा वेशभूषा तथा देश की गरिमा को तथा देश भक्ति प्रेम त्याग सेवा की वापसी की प्रार्थना करते है।
हमारी संसद है लोकतंत्र का शिवालय
वन गया सरकारी कार्यालय
इसमे हो कर्मयोगी सदाचारी
न कि वेतन भोगी कर्मचारी
भारत माता जी जय जय जयहिन्द

काश इंडिया से

अन्ना जी सम्हल सम्हल कर चले

खबर है कि अन्ना जी के कुछ कार्यकर्तओ ने योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोटेक सिंह अहलूवालिया के दरवाजे पर जाकर गरीबी रेखा के वर्तमान प्रकाशित आंकडो के खिलाफ नारे लगाये। मुझे इस पर आश्चर्य हुआ हुआ कि क्या अन्ना जी इतना भी नीचे उतर सकते है? मैने पता किया तो पता चला कि इस नारेबाजी से अन्ना जी के आंदोलन का कोई सम्बंध नही था। यह नारे बाजी कुछ अन्य लोगो ने सस्ती लोकप्रियता प्राप्त के लिये की थी।

अन्ना जी का आंदोलन किसी भी रूप मे सरकार के खिलाफ नहीं था। यह तो पूरी तरह वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के खिलाफ था जिसमे लोक और तंत्र के बीच लम्बी दूरी बन गई है। इतनी लम्बी दूरी कि तंत्र लोक के उपर हावी हो गया है और लोक किंकर्तब्य विमूढ । लोक को बहला फुसला कर रखने मे तंत्र परिवार भी निरंतर सक्रिय रहता है तथा तंत्र आश्रित भी । भारतीय जनता पार्टी तथा अन्य विपक्षी दल तंत्र परिवार के ही सदस्य होते है। अन्ना जी के आंदोलन मे यह बात पूरी तरह साफ हो चुको है कि भारतीय जनता पार्टी दुहरे मापदण्ड अपना रही थी फिर भी अन्तिम समय मे उसने रूख स्पष्ट करके सरकार को मानने पर मजबूर कर दिया। कुछ अन्य तंत्र आश्रित लोग भी इस संघर्ष मे बेनकाब हुए है। अग्निवेष, अरूणा राय तथा अनेक ऐसे तंत्र आश्रितों ने पहले तो अन्ना जी के साथ खडे होकर उन्हे अपने अनुकुल करने की कोशिश की और जब वैसा नही दिखा तो अपना विद्रोहो तेवर भी दिखाने से बाज नही आये। अब आंदोलन अन्ना बिल्कुल शान्त है किन्तु कुछ लोगो की आदत होती है कि वे सुर्खियो मे बने रहने के लिये वर्ष भर कोई न कोई आंदोलन करते ही रहते है। अन्ना जी को ऐसे लोगो से बचना चाहिये।
अन्ना जी को ध्यान रखना है कि भारत की जनता ने तंत्र के गलत क्रिया कलापो के विरूद्ध आपका समर्थन नही किया है। जनता ने तो तंत्र की उच्श्रृखलता के विरूद्ध आपका समर्थन किया है । यह अलग बात है कि सामने लोकपाल का मुद्दा आया किन्तु लोग तो लोकपाल बिल को जानते ही नही थे। न वे आपको जानते थे न बिल को फिर भी लोगो को इतना लगा कि वर्तमान तंत्र को एक सफल चुनौती दी जा रही है जो स्वतंत्रता के बाद कभी नही थी। अब आप कभी मणिपुर की अनशन कर्ता इमिला के मामले मे बोलेगें तो कभी काश्मीर के मामले मे । इन विषयो पर अन्ना जी के साथी कुछ बोले ता कोई बात नही किन्तु अन्ना जी एक आंदोलन के प्रतीक बन चुके है इसलिय उन्हे सम्हल सम्हल कर ही बोलना चाहिये।

उडीसा के विधायक की हत्या

उडीसा मे एक विधायक की गोली मार कर हत्या कर दी गई । विधायक न तो कोइ स्थापित बाहुबली के रूप मे बदनाम था न ही अत्याचारी या शोंषक के रूप मे । उसका दोष मात्र इतना ही दिखता है कि वह एक विधायक था जो वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था का एक भाग है तथा जिसे नक्सलवाद सहित कुछ हिंसक सत्ता संघर्ष मे एक पक्ष माना जाता है। मेरी सलाह है कि विधायक महोदय का शव कही और रखने की अपेक्षा ऐसी हिंसा के प्रबल पक्षधर दिग्विजय सिंह अथवा स्वामी अग्निवेष के दरवाजे पर रखा जावे।

मेरा तो यह भी मानना है कि यदि नक्सलवादी किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या करें जो मात्र वर्तमान व्यवस्था का भाग होने मात्र का ही दोषी हो तो उनके परिवार जन ऐसे शव ऐसे हिंसा के समर्थक वकील नुमा लोगों के दरवाजो पर रखने की पहल करें। यह कैसे संभव है कि आप दोनो हाथ मे लड्डू रखें। यदि किसी तरह नक्सलवाद या आतंकवाद भारत मे मजबूत होता है तो आपका स्थान उस नयी व्यवस्था मे भी पूरी तरह सुरक्षित है क्योकि आपने उक्त विचारधारा के कठिन समय मे भी बदनामी सहकर भी सहायता की है। यदि वर्तमान व्यवस्था जीत जाती है तब भी आपको कोई खतरा नही क्योकि आप वर्तमान व्यवस्था मे या तो राष्ट्रीय महासचिव के उच्च पद पर स्थापित है अथवा आर्य सन्यासी जैसे महत्वपूर्ण पद पर अथवा राष्ट्रीय सलाहकार समिति मे । कांग्रेस पार्टी अथवा आर्य समाज ऐसे लोगों को किस मजबूरी मे या किस योजना

के अंतर्गत साथ चिपका कर रखे हुए है यह तो वे जाने किन्तु हम सबको जरूर ऐसी कोशिश करनी चाहिये कि इनकी दुहरी भूमिका की पोल खुले । जयचंद यदि विरोध पक्ष मे खुलकर आ जावे तो उतना नुकसान नही जितना साथ रहकर विपक्ष की मदद करने से होता है । यदि दिग्विजय सिंह का घर खोजना कठिन हो तो राहुल गांधी का घर खोजना कठिन नही होगा क्योकि उन्होने ही तो अपने को प्रधानमंत्री बनाने की ट्रेनिंग के लिये ऐसे लोगो को पाल पोसकर रखा है।